'अप्प दीपो भव'

वॉयस ऑफ बुद्धा

Postal Reg. No.-DL(ND)-11/6144/2013-15
WPP Licence No.- U(C)-101/2013-15
R.N.I. No. 68180/98

प्रकाशन तिथि- 15 जनवरी, 2014

मूल्य : पाँच रूपये

प्रेषक : डॉ0 उदित राज (राम राज) चेयरमैन - जस्टिस पब्लिकेशंस, टी-22, अतुल ग्रोव रोड, क्नॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001, फोन : 23354841-42

Website : www.uditraj.com E-mail: dr.uditraj@gmail.com

● वर्ष : 17 ● अंक 4 ● पाक्षिक ● द्विभाषी ● 1 से 15 जनवरी, 2014

अतीत पर ध्यान मत दो, भविष्य के बारे में मत सोचो, अपने मन को वर्तमान क्षण पर केंद्रित करो। —गौतम बुद्ध

भ्रष्टाचार बनाम भागीदारी

डॉ. उदित राज

इस समय भ्रष्टाचार के खिलाफ पूरे देश में माहौल तैयार हो गया है। अन्ना हजारे और आम आदमी पार्टी इसके प्रतीक हो गए हैं। विशेष रूप से नौजवान बड़े आशावान हो गए हैं कि अब उनके भविष्य उज्जवल होने वाले हैं और बेईमानों का सफाया। इस सपने को मूल रूप से मीडिया ने दिखाया। जब कोई लहर चलती है तो उस समय दूसरे पक्ष की बात कम ही सुनी जाती है। लेख में दूसरे पक्ष की बात रखने का प्रयास किया जा रहा है। निश्चित तौर से भ्रष्टाचार बड़ी समस्या है। जिस भ्रष्टाचार की बात इस समय चल रही है वह आर्थिक है, जबकि हमारे समाज में सामाजिक और धार्मिक भ्रष्टाचार उतना ही महत्वपूर्ण है। संसद ने लोकपाल बना दिया है लेकिन उसमें मांग पक्ष पर ही प्रतिबंध लगाया गया है न कि पूर्ति पर। यहां पूर्ति का मतलब है जो घूस देते हैं या अपने पक्ष में नीति बनवाते हैं। भ्रष्टाचार मिटाने के इन झंडाबरदारों की तरफ पूर्ति पक्ष का प्रबल समर्थन है इसलिए उनके भ्रष्टाचार की बात न अपने जनलोकपाल में रखा और न ही आंदोलन चलाया। देश की जनता की नजर में अधिकारी और नेता ही भ्रष्ट हैं और उद्योग जगत, जज, दलाल, वकील एवं एनजीओ और मीडिया आदि जैसे भ्रष्टाचार में शामिल ही न हों।

इस आंदोलन के समर्थक दलित, आदिवासी और पिछड़े भी हैं। आम आदमी पार्टी को दिल्ली में 29 प्रतिशत दलित वोट मिला। शायद ही कोई दलित-आदिवासी सड़क, पुल, भवन, शराब का ठेकेदार, कोयला और खनिज के व्यापारी, आयकर दाता, हथियार का व्यापारी, बिक्री कर दाता, उत्पाद एवं सीमा शुल्क दाता हो। एक भी टेलीकॉम कंपनी के मालिक नहीं, न ही बिल्डर और कॉन्ट्रैक्टर हैं। निजी शिक्षण संस्थान, कॉरपोरेट हाउस, मीडिया हाउस, बड़े एनजीओ, हुंडी और हवाला व्यापारी और आयातक और निर्यातक होने का प्रश्न नहीं उठता है। अधिकारियों एवं नेताओं को इन्हीं लोगों के द्वारा रिश्वत और गलत नीतियां बनवाई जाती है। बिजली या कर की चोरी भी इन्हीं में से करते हैं। ऐसे में इस आंदोलन में दलित-आदिवासी का शामिल होने का कितना सरोकार है? यह प्रश्न उठ सकता है कि नेता और अधिकारी, दलित और आदिवासी वर्ग से जो हैं, ऐसा भी नहीं है क्योंकि मलाईदार विभाग और पद पर ये प्रायः होते ही नहीं। दिल्ली में आप की सरकार बनी तो दो दलित मंत्री बनें जो मलाईदार विभाग माने ही नहीं जाते। इनके पास समाज कल्याण, महिला और बाल, अनुसूचित जाति और जनजाति और रोजगार और सवर्ण मंत्रियों के पास सभी मलाईदार विभाग दिए गए- परिवहन, पीडब्ल्यूडी, गृह, वित्त, योजना, पावर, सर्विस, शिक्षा, राजस्व, खाद्य एवं आपूर्ति, पर्यावरण, पर्यटक, कानून, प्रशासन, स्वास्थ्य, उद्योग आदि। कमोबेश पूरे देश में विभागों एवं पदों का वितरण इसी क्रम पर होता है। अपवाद को छोड़कर इन वर्गों की कितनी सीमित भूमिका भ्रष्टाचार करने में है यह जानना मुश्किल नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि इन्हें मौका मिले तो भ्रष्टाचार नहीं करेंगे लेकिन हां पीढ़ियों से अनुभव और पाचन शक्ति नहीं होने की वजह से वे उतना नहीं कर पाएंगे और करेंगे भी तो शोर ज्यादा होगा और पकड़े भी जाएंगे।

यक्ष प्रश्न यह उठता है कि क्या इनको भ्रष्टाचार मिटाने की मुहिम में शामिल नहीं होना चाहिए? शामिल होना चाहिए क्योंकि इसका संबंध महंगाई, विकास और राष्ट्रीयता से है। लेकिन इनका स्वंय का विकास दूसरे आंदोलन जैसे भागीदारी से होगा। जिसके पास जमीन, व्यापार, उद्योग, संस्था, मीडिया, शेयर एवं वित्त क्षेत्र में भागीदारी, ठेका, कोयला एवं अन्य खनिज, खादान आदि हैं ही नहीं तो कहां से आर्थिक मजबूती होगी और देश की मुख्यधारा में शामिल हो सकेंगे? भ्रष्टाचार मिटाने वाला आंदोलन का संबंध इनके भागीदारी और सम्मान से लगभग नहीं के बराबर है। इनमें से ज्यादातर यदि भ्रष्टाचार के शिकार हैं तो छोटे पैमानों पर जैसे राशन कार्ड, जन्मतिथि प्रमाणपत्र, जाति प्रमाण पत्र आदि प्राप्त करने के लिए न कि बड़ा लाभ लेने के लिए। भ्रष्टाचार मिटाने की आंधी आने से सामाजिक न्याय और भागीदारी की बात दब गई है। आम आदमी पार्टी की उभार के कारण भी लोकपाल जल्दी बना और अब इससे संबंधित और भी बिल फरवरी में होने वाले संसद सत्र में पेश होने वाले हैं। अनुसूचित जाति/जनजाति संगठनों का अखिल भारतीय परिसंघ की रैली गत् 16 दिसंबर को दिल्ली के जंतर-मंतर पर हुई कि संसद में पदोन्नति में आरक्षण देने एवं आरक्षण कानून बनाने के विधेयक को पास किया जाए। उस समय तो नहीं हो पाया लेकिन उम्मीद थी कि फरवरी में होने वाले सत्र में किया जाएगा लेकिन भ्रष्टाचार मिटाने वाली आंधी के प्रभाव में लगता नहीं कि हो पाएगा। अब न खाली पदों पर भर्ती पर चर्चा है, निजी क्षेत्र में आरक्षण देने की बात भी दब गई, सफाई काम में ठेकेदारी प्रथा की समाप्ति एवं कर्मचारियों को नियमित करने की आवाज कमजोर पड़ गयी, अत्याचार एवं जुल्म हो रहे हैं, अब वह भी गौण हैं। अन्य क्षेत्र जैसे उच्च न्यायपालिका, ठेका, भूमिहीनों को भूमि, उद्योग और मीडिया में भागीदारी की बात को उठाया भी जाए तो कहां प्राथमिकता मिलने वाली है?

इससे कुछ लोग असहमत होंगे कि भ्रष्टाचार का सबसे ज्यादा प्रभाव निर्बल वर्ग पर होता है, ऐसा नहीं है। बल्कि उसके ऊपर इसका कम असर है। इनके ऊपर सबसे ज्यादा असर सामाजिक भेदभाव और विभिन्न क्षेत्रों में भागीदारी न होने की वजह से है। इस आंदोलन से बाजार पर भी प्रतिकुल असर पड़ा है। अधिकारी और नेता काम करने में तेजी नहीं दिखा रहे हैं और व्यापारी भी फूंक-फूंक कर कदम रख रहे हैं। विदेशी निवेश पर प्रतिकूल असर तो पड़ना ही है चूंकि दुनिया की बड़ी शक्तियां चाहती ही ऐसा है कि जो देश विकास कर रहे हैं वहां पर व्यवस्था के खिलाफ कुछ आंदोलन चलता रहे। इस आंदोलन में फोर्ड फाउंडेशन, हिओस, पनोस और डच आदि संस्थानों की भी भूमिका है। यह आंदोलन जाति पूर्वाग्रह से भी ग्रसित है क्योंकि इसकी नजर में राजनीति और सरकारी विभाग में ही भ्रष्टाचार है जहां पर दलित और पिछड़ों की भागीदारी है।

कुछ भी न करो तो ...

देश में आरक्षण विरोधी एवं जातिवादी ताकतों की सक्रियता को देखकर कुछ तो प्रेरणा लेनी चाहिए। अगर कुछ नहीं कर सकते हो तो कम से कम सप्ताह में पांच ऐसे लोग, जो अंबेडकरवादी और मिशनरी हैं, का नाम, पता व मोबाइल नंबर 56767 पर एसएमएस करें। 160 अक्षर (Character) से ज्यादा का एसएमएस नहीं भेजा सकता है। एसएमएस में सबसे पहले UR टाइप करें उसके बाद SPACE देकर नाम, पता एवं मोबाइल नंबर आदि दें। मोबाइल नंबर का होना ज्यादा जरूरी है और ईमेल हो तो उसे भी भेजें।

परिसंघ और समर्थक यदि इतना छोटा सा भी काम कर लें तो हमारे पास लाखों सही लोगों का मोबाइल नंबर आ जाएगा और जब भी चाहेंगे तो उन्हें अपने आंदोलन या आवश्यक सूचना एसएमएस के द्वारा सूचित करते रहेंगे। पूरा पता आ जाए तो और भी अच्छा है। यदि कई लोगों का साथ भेजना हो तो कम से कम नाम, जिला, प्रदेश और मोबाइल एसएमएस करें। इस तरह से एक से ज्यादा लोगों का डिटेल एक ही एसएमएस में आ जाएगा। भेजने के लिए सामने का उदाहरण को गौर से पढ़ें-

(Note- UR के बाद एक स्पेस अवश्य छोड़ें)

आम आदमी पार्टी का उभार परिस्थितिवश

(यह लेख इंडिया टूडे के 8 जनवरी, 2014 के अंक में प्रकाशित हुआ था।)

डॉ. उदित राज

दिल्ली में आम आदमी पार्टी के उभार ने सबको चौंका दिया। अगर थोड़ा ध्यान से सोचा जाए तो संगठन और नेतृत्व का योगदान कम है बल्कि परिस्थितियों का ज्यादा है। अप्रैल 2011 में अन्ना हजारे ने जी-2 स्पेक्ट्रम और कॉमन वेल्थ गेम्स के भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन किया तो अचानक एक माहौल बन गया। बीजेपी, आरएसएस, विश्व हिन्दू परिषद, रामदेव, ऑर्ट ऑफ लिविंग सहित तमाम संगठनों का समर्थन रातोंरात मिला। अरविंद केजरीवाल ने बड़ी ही निपुणता से इसमें अपनी घुसपैठ बना ली। अगस्त, 2011 में जब 12 दिन का अनशन रामलीला मैदान, दिल्ली में किया तो दिल्ली ही नहीं बल्कि मीडिया ने पूरे देश को भ्रष्टाचार एवं महंगाई के मुद्दे पर मथकर रख दिया। पूरे देश से हजारों एनजीओ, कार्यकर्त्ता समर्थन देने आ पहुंचे। केजरीवाल और उनके साथी इरादतन सक्रिय रहे कि आगे चलकर इस सबका लाभ उठाना है और अंत में हुआ भी यही। इससे देश-विदेश से टेक्नोक्रेट्स, लेखक एवं जागरूक लोग सोशल मीडिया एवं अन्य माध्यमों से इनसे जुड़ गए। इन्होंने शिरकत कर्त्ताओं के नाम, पता और फोन आदि भी जुटा लिए। रामलीला मैदान में माहौल बना कि सभी जनप्रतिनिधि भ्रष्ट एवं निकम्मे हैं और सिविल सोसाइटी का आंदोलन सही है। विशेष रूप से सवर्ण समाज का नौजवान इस आंदोलन से ज्यादा ही प्रभावित हुआ, क्योंकि उसे न तो आरक्षण जैसी चीज स्वीकार थी और न ही उसकी वकालत करने वाले नेता।

अरविंद केजरीवाल भारतीय राजस्व सेवा की 1992 बैच के हैं और इस्तीफा 2006 में दिया। इतने दिन सेवा में रहते हुए विभागीय कार्यों में कोई कीर्तिमान नहीं स्थापित कर सके। मेरे संज्ञान में इन्होंने एक भी बड़े कर चोरी का मामला नहीं पकड़ा? आंदोलन के दौरान प्रचार किया कि वे इन्कम टैक्स कमिश्नर रहते तो करोड़ों-अरबों कमा जाते। आई.आर. एस. एसोसिएशन ने इस पर आपत्ति जताई कि क्या आयकर विभाग में सभी अधिकारी भ्रष्ट हैं और यह भी कहा कि ये कमिश्नर के पद तक कभी नहीं पहुंचे थे। इससे यह कहा जा सकता है कि इनकी पत्नी आई.आर.एस. के पद पर रहते हुए करोड़ों-अरबों कमाया होगा। मैं जब गाजियाबाद में उसी पद पर लगभग 5 साल तक रहा, विभाग मेरे नाम से जाना जाता था और व्यापारी गब्बर सिंह कहते थे। स्वयं की बड़ाई करने का प्रयास नहीं कर रहा हूं बल्कि यह समझने के लिए कि क्या व्यवहार में अरविंद केजरीवाल जो दिख रहे हैं, वह हो पाएंगें? आयकर विभाग में चपरासी का इस्तेमाल न करना, मेज को स्वयं साफ करना आदि कृत्य से सादगी तो स्थापित की लेकिन इससे कर की वसूली का क्या संबंध? रामलीला मैदान में शपथ लें या हाउस में जनता के वायदे से इसका क्या संबंध है? सरकारी बंगले में रहें या न रहें, सुरक्षा न लें आदि का संबंध सरकार चलाने से क्या है?अपने बच्चों की कसम खाया था कि न कांग्रेस से समर्थन लेगें और न भाजपा से, उसका क्या हुआ? जनता सीधी है और इन बातों से प्रभावित हो जाती है और नेता भी सादगी से रहे हैं। सरकार बनाएं या न बनाएं उस पर राय-शुमारी कराकर जनतंत्र का अपमान ही किया है। जब कांग्रेस ने सरकार बनाने के लिए सहयोग दिया तो इन्हें सीधा अपने वायदों को पूरा करने के लिए सरकार बनाकर काम करना शुरू कर देना चाहिए था। शीघ्र ही जनता से जो वायदे किए हैं, जैसे – 700 लीटर प्रतिदिन पानी, बिजली का बिल आधा करना, सफाई के काम में ठेकेदारी प्रथा की समाप्ति और उन्हें नियमित करना, अनियमित कॉलोनियों को नियमित करना, सरकारी स्कूलों का स्तर बढ़ाकर पब्लिक स्कूल के समान करना, जन लोकपाल बनाना, मोहल्ला समिति का गठन, 500 सरकारी स्कूलों की स्थापना, 0 प्रतिशत ब्याज दर पर दलित उद्यमियों को ऋण देना आदि पर कार्य शुरू कर देना चाहिए था।

भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन के इस मुकाम पर आम आदमी पार्टी पहुंची है, लेकिन क्या यह संभव होगा? जब रामलीला मैदान में अनशन किया तो अनुसूचित जाति/जन जाति परिसंघ की ओर से एक रैली समानांतर की गयी और इनसे सवाल किया गया था कि क्यों नहीं अपने बिल में उद्योग जगत्, मीडिया एवं एनजीओ के भ्रष्टाचार को शामिल किया? लोकपाल में आरक्षण देने की भी बात नहीं थी तो हमने बहुजन लोकपाल बिल पेश करके दलितों, आदिवासियों, पिछड़ों व अल्पसंख्यकों का आरक्षण सुनिश्चित कराया। जिस तरह से मीडिया, एनजीओ और उद्योगजगत् का समर्थन इनको है, अगर इसका आधा भी मुझे मिले तो शायद इनसे ज्यादा समाज को प्रभावित किया जा सकता है। अभी भी मेरे संगठन के बराबर के कार्यकर्त्ता इनके पास नहीं होगें लेकिन मीडिया जिस तरह से 24 घंटे इनको दिखा और लिख रही है, लोगों की सोच इनकी बंधुआ बन गयी है, यह भी एक तरह का फासीवाद है। क्या अधिकारियों एवं नेताओं के भ्रष्टाचार पर पाबंदी लगने से इसकी समाप्ति हो जाएगी? ये क्यों नहीं उद्योग जगत्, मीडिया और एनजीओ के भ्रष्टाचार पर कुछ कहते? जब तक सामाजिक न्याय की बात न की जाए, क्या यह स्वस्थ राजनीति होगी? सामाजिक न्याय के बारे में अभी तक कोई प्रतिबद्धता नहीं दिखी है। 18 सूत्रीय मांग पर जो पत्र इन्होंने लिखा है, उसमें

आरक्षण नहीं है और इसी से इनकी मानसिकता का पता लगता है। अरविंद केजरीवाल आरक्षण विरोधी संगठन – यूथ फॉर इक्वालिटी के मंच पर सक्रिय रहे हैं। देखना है कि क्या जन लोकपाल बिल में उद्योग जगत के भ्रष्टाचार को शामिल करेगें? क्या आरक्षण का प्रावधान उसमें होगा। जो दिख रहा है, वैसा है नहीं क्योंकि आम आदमी पार्टी ने भी जातीय समीकरण के आधार पर टिकट दिया है – जैसे, अम्बेडकर नगर, त्रिलोकपुरी, सुल्तानपुरी एवं मंगोलपुरी से बाल्मीकि प्रत्याशी उतारे जहां पर इस जाति की संख्या ज्यादा है।

आम आदमी पार्टी की कुछ उपलब्धि जरूर है और वह है इनकी सादगी और कुछ शुरुआती ईमानदारी हालांकि अरविंद केजरीवाल की शुरुआत फोर्ड फाउंडेशन के अनुदान से हुई है। विदेशी दानकर्त्ता कुछ न कुछ मकसद तो जरूर रखते हैं। पारंपरिक पार्टियों के नेताओं के अहंकार, भ्रष्टाचार और महंगाई से लोग परेशान हैं और यह भी एक कारण था कि वे इनकी ओर मुखातिब हुए। सरकार बनाने के लिए जो अनावश्यक प्रोपोगंडा कर रहे हैं, उससे लगता है कि काम में यकीन कम और बात करने में ज्यादा। निश्चित तौर से केजरीवाल ने बहुत सक्षम नेतृत्व दिया है। सरकार ठीक चला जाएं तो इससे अच्छी बात देश के लिए क्या होगी?

दलित राजनीति की दशा और दिशा

(यह लेख यथावत के 1-15 जनवरी, 2014 के अंक में छपा था।)

डॉ. उदित राज

1980 के दशक से उत्तरी भारत में दलित राजनीति का नेतृत्व दलितों ने शुरू किया। इसके पूर्व यह ठेकेदारी कांग्रेस के पास थी। उत्तरी भारत में हालत यह थी कि शत्प्रतिशत् दलित मानते थे कि उनके लिए जो भी कुछ हुआ वह गांधीजी और कांग्रेस ने किया। बाबू जगजीवन राम भले ही कांग्रेस के एक बड़े नेता थे और वे दलित नेता भी थे, लेकिन कार्य जवाहर लाल नेहरू और इंदिरा गांधी के नेतृत्व में ही किए। सन् 1984 में बहुजन समाज पार्टी बनी, जिसका नेतृत्व दलित ने किया और वे थे कांशीराम। महाराष्ट्र में पहले से ही डॉ0 बी. आर. अम्बेडकर के नेतृत्व में दलित राजनीति की शुरुआत हो चुकी थी। उनके परिनिर्वाण के बाद रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया कई धड़ों में बंट गयी। मायावती के नेतृत्व में जिस तरह से दलित राजनीति का फैलाव उ0प्र0 के बाहर हो रहा था, उस पर विराम ही नहीं लगा बल्कि गिरावट आयी है।

वर्तमान में दलित राजनीति न केवल गिरावट पर है बल्कि बिखराव का भी शिकार है। रामविलास पासवान की लोक जनशक्ति पार्टी ने शुरुआती दौर में अच्छे नतीजे दिए, लेकिन वह धीरे-धीरे बिहार तक सिमट कर रह गयी। इस बार के चारो विधान सभा चुनावों में उपस्थिति नहीं के बराबर रही। बहुजन समाज पार्टी की दशा उम्मीद भरी थी, परन्तु दिल्ली, राजस्थान, मध्य प्रदेश एवं छत्तीसगढ़ के नतीजों ने निराशा में परिणति कर दी। 2008 में दिल्ली के विधान सभा चुनाव में 14.05 प्रतिशत वोट मिले जबकि इस बार 5.7 प्रतिशत से ज्यादा का आंकड़ा नहीं छू पायी। इसी तरह से राजस्थान में 2008 के चुनाव में 6 सीटें ली थी, लेकिन इस बार 3 पर सिमट गयी। विधान सभा चुनाव में राजस्थान में 3.4 प्रतिशत, छत्तीसगढ़ में 4.4 प्रतिशत एवं मध्य प्रदेश में 6.4 प्रतिशत वोट प्राप्त किए जो पहले से कम है। दलित राजनीति की शुरुआत जाति उन्मुख नहीं थी, लेकिन अब धीरे-धीरे इसका शिकार हो गयी है। लगभग सभी दलों ने जातीय समीकरण के आधार पर राजनीति करना शुरु कर दिया है और उसका असर दलित राजनीति पर भी पड़ना स्वाभाविक था। स्वयं के लाभ के लिए भी जिसने भी चाहा अपनी जाति को गोलबंद करना शुरु कर दिया और धीरे-धीरे तमाम दलित की उपजातियों के संगठन और पार्टियां खड़ी हो गयी। भारत संक्रमण काल के दौर से गुजर रहा है और लोगों को बिना जवाबदेही एवं परिश्रम के सत्ता में साझेदारी लेना इस रास्ते से आसान होने लगा।

दलित राजनीति सबसे ज्यादा प्रभावित मीडिया से हुई। 80 के दशक में जब कांशीराम ने लोगों को संगठित करना शुरु किया तो उन्होंने नकारात्मक प्रचार का फायदा लिया। जहां-जहां सभाएं होती थी तो दहाड़कर कहते थे कि मनुवादी लोग यदि सभा में हों तो छोड़कर चले जाएं। मीडिया के ऊपर भी तीखी टिप्पणियां करते थे। पत्रकारों ने चिढ़कर और पूर्वाग्रहवश जितना विरोध में लिख सकते थे लिखे और वह बसपा के लिए वरदान साबित हुआ। वर्तमान में विशेषरूप से इलेक्ट्रानिक मीडिया की बादशाहत की वजह से दलितों और पिछड़ों के बारे में न नकारात्मक और न ही सकारात्मक चर्चा और समाचार दिखता है। इन चार राज्यों के चुनावों में नहीं के बराबर चर्चा रही। ऐसा लगा कि जैसे इन वर्गों का अस्तित्व ही न हो। चाहे सामाजिक हो या राजनैतिक या और कोई अन्य विषय पर जब भी चर्चा होती है, अपवाद को छोड़कर न दलित होते हैं और न ही उनसे संबंधित विषय होता है। 90 के दशक के बाद न केवल इलेक्ट्रानिक मीडिया बल्कि प्रिंट मीडिया का प्रभाव इतना बढ़ गया कि उसने लोगों को अपने से बाहर जाकर सोचने ही नहीं दिया। सोशल मीडिया शुरुआती दौर में सवर्णों के हाथ में रही लेकिन अब इसका फैलाव सभी वर्गों में होता जा रहा है। निकट भविष्य में सोशल मीडिया राय बनाने में निर्णायक साबित होगी। दलितों और पिछड़ों में वर्तमान मीडिया के प्रति आक्रोश बहुत है और बहुत जल्दी ही इसके प्रति वे संवेदनहीन होने वाले हैं। मीडिया ने दलित आंदोलन की दशा और दिशा तो खराब की ही है, इसके साथ-साथ काले धन का भी बड़ा योगदान है। हजारों वर्षों से लुटे-पिटे लोगों के पास अभी भी सवर्णों के मुकाबले में संसाधन नहीं हैं। वर्तमान राजनीति में व्यावसायीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है। पहले धन लगाकर सत्ता प्राप्त की जा रही है और फिर पूंजी सहित भारी लाभ कमाया जा रहा है। इनके पास पूंजी का अभाव है, इसलिए राजनीति भी कमजोर है। लोग भ्रष्टाचार से ऊब चुके हैं और बदलाव चाहते हैं। आम आदमी पार्टी ने दिल्ली विधान सभा चुनाव में इस मामले में एक नई उम्मीद जगायी है।

विचारहीन राजनीति के दौर से हम गुजर रहे हैं। ऐसे में दलित राजनीति कैसे प्रभावित नहीं हो सकती? लोगों की सामयिक समस्याओं और मांगों को पूरा करने का वायदा एवं लोभ और लालच देकर समर्थन जुटा लेने की राजनीति इस समय हावी है। लोग भी भौतिकवादी हो गए हैं और लोभ और लालच से प्रभावित होते रहते हैं। जिन दलों ने सिद्धांत को पकड़कर रखा, वे कमजोर हुए हैं। दूसरी तरफ आम आदमी पार्टी ने एक नई दिशा देने का काम किया है, हालांकि यह भी विचारहीन दल है।

दलित नेता दूसरों की तुलना में कम अहंकारी भी नहीं है। बसपा सुप्रीमो मायावती से मिलना कार्यकर्त्ताओं के लिए लगभग

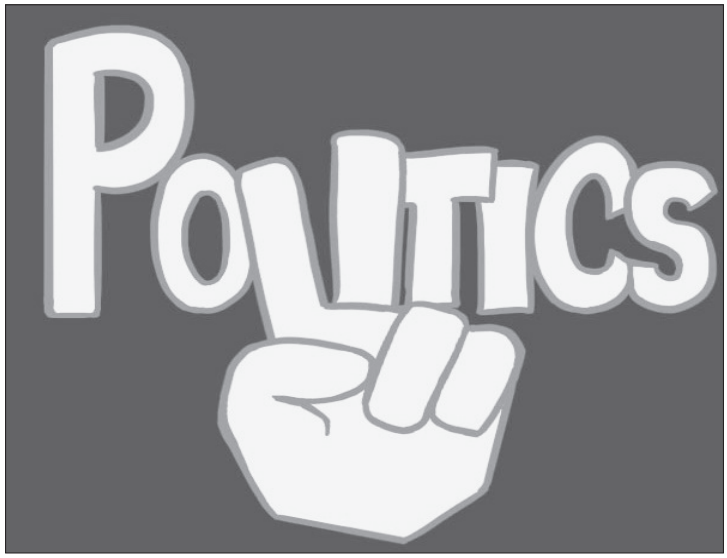

असंभव है। शिक्षित दलित तो वहां रह ही नहीं सकता। जनतंत्र किस चिड़िया का नाम है? बसपा के संगठन में उसके लिए कोई जगह ही नहीं है। न मुद्दा है, न विचार और न ही संघर्ष। जो लोग कुछ दलित अधिकार के लिए करना चाहते भी हैं तो उन्हीं को समाज विरोधी घोषित कर दिया जा रहा है। सत्ता प्राप्ति के पहले कुछ भी संघर्ष करना, मांग रखना या किसी तरह का आंदोलन भीख मांगने जैसा माना जाने लगा है। चुपचाप रहकर सत्ता प्राप्ति की दिशा में करते रहना ही सही दलित राजनीति हो गयी है। यही कारण है कि उत्तरी भारत में जिस दलित नेता के पास सबसे ज्यादा समर्थन है, वहां कोई आंदोलन नहीं है और न संघर्ष। अब लोग इस तिलस्म से बाहर निकलने लगे हैं। अन्ना हजारे और अरविंद केजरीवाल के पास मायावती के मुकाबले में न लोग हैं और न साधन लेकिन उन्होंने भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन किया और राजनीति में एक नया आयाम जोड़ दिया। फिलहाल दलितों में यह उतना संभव नहीं है क्योंकि अभी भी बहुमत में लोग सत्ता प्राप्ति के नशे में ही डूबे हुए हैं। अधिकार के लिए संघर्ष करना, अन्याय के खिलाफ खड़ा होना और धरना-प्रदर्शन आदि माना जाता है कि मनुवादियों के सामने भीख मांगने के समान है। वर्तमान में सबसे ज्यादा दलित राजनीति को पीछे ले जाने वाली यही मानसिकता है। यह मानसिकता बामसेफ से निकली और बसपा के दर्शन का हिस्सा बनती चली आ रही है। जिस समय कांशीराम जी ने यह संदेश दिया वह दौर भिन्न था, अगर वे आज होते तो शायद आरक्षण, उत्पीड़न, महंगाई, बिजली और रोजगार जैसे मुद्दों को लेकर सड़क पर उतरने के लिए आवाहन करते।

राजनीतिक सत्ता का विकेन्द्रीकरण हुआ है। न्यायपालिका, मीडिया एवं उद्योगजगत में इसके अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण किया है। यह बात दलितों को समझना पड़ेगा। यह वह भारत नहीं है जब सोचा गया था कि राजनैतिक सत्ता वह चाबी है जिससे सारे ताले खुल जाते हैं। अन्य संस्थाओं ने भी ताला खोलना शुरु कर दिया है। अनुसूचित जाति/जन जाति संगठनों का अखिल भारतीय परिसंघ ने 3 संवैधानिक संशोधन, निजी क्षेत्र में आरक्षण के मुद्दे पर राष्ट्रीय मुद्दा बनवाना, पिछड़ों को उच्च शिक्षण संस्थाओं में आरक्षण की लड़ाई लड़ना, लोकपाल में आरक्षण आदि उपलब्धियां हासिल की हैं जो सत्ताधारी पार्टियां भी नहीं कर पायीं। जब बहुजन समाज पार्टी की सरकार उ0प्र0 में थी तब पदोन्नति में आरक्षण समाप्त हुआ। अब यह साबित होता है कि राजनैतिक सत्ता ही सबकुछ नहीं है।

अभी भी देश की बड़े पैमाने पर दलित राजनीति गैर दलितों के हाथ में ही है। महाराष्ट्र में आर.पी.आई., बिहार में लोक जनशक्ति पार्टी, मध्य प्रदेश में गोंडवाना गणतंत्र पार्टी, उ0प्र0 और उससे सटे हुए राज्यों में बसपा, कर्नाटक में दलित संघर्ष समिति और तमिलनाडु में पुदिया तमिलगम और दलित पैंथर आदि की राजनीति दलितों के नेतृत्व में है। जब दशा ठीक न हो तो दिशा की भी वही स्थिति होगी। निजीकरण और उदारीकरण के दौर से भारत गुजर रहा है। राजनीति के वर्तमान स्वरूप में परिवर्तन लाना होगा, वरना परिस्थितियां और खराब होगीं। अब युवा पीढ़ी के हाथ में नेतृत्व आना चाहिए। दुर्भाग्य से इस दिशा में कोई काम नहीं दिख रहा है। आधुनिकता, भौतिकता, विचारहीनता, संचार व मनोरंजन के क्षेत्र में क्रांति और क्रिकेट आदि से युवा पीढ़ी इस कदर प्रभावित हो गयी है कि वह सत्य और खतरे दोनो को समझने में असमर्थ है। जब तक इनके बीच काम नहीं होगा कोई सार्थक दिशा मिलने वाली नहीं है।

पाठकों से अपील

'वॉयस ऑफ बुद्धा' के सभी पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अभी तक वार्षिक शुल्क/शुल्क जमा नहीं किया है, वे शीघ्र ही बैंक ड्रॉफ्ट द्वारा 'जस्टिस पब्लिकेशंस' के नाम से टी-22, अतुल ग्रोव रोड, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110001 को भेजें। शुल्क 'जस्टिस पब्लिकेशंस' के खाता संख्या 0636000102165381 जो पंजाब नेशनल बैंक की जनपथ ब्रांच में है, सीधे जमा किया जा सकता है। जमा कराने के तुरंत बाद इसकी सूचना ईमेल, दूरभाष या पत्र द्वारा दें। कृपया 'वॉयस ऑफ बुद्धा' के नाम ड्राफ्ट या पैसा न भेजें और मनीआर्डर द्वारा भी शुल्क न भेजें। जिन लोगों के पास 'वॉयस ऑफ बुद्धा' नहीं पहुंच रहा है, वे सदस्यता संख्या सहित लिखें और संबंधित डाकघर से भी सम्पर्क करें। आर्थिक स्थिति दयनीय है, अतः इस आंदोलन को सहयोग देने के लिए खुलकर दान या चंदा दें।

सहयोग राशिः

पांच वर्ष : 600 रुपए

एक वर्ष : 150 रुपए

सफाई कामगार संगठनों का परिसंघ

द्वारा सफाई पेशे में ठेकेदारी खत्म कराने के लिए

10 फरवरी को दिल्ली के मुख्यमंत्री का घेराव

विनोद कुमार

विनोद कुमार,
राष्ट्रीय अध्यक्ष
9871237186

साथियो,

2006 में छठां वेतन आयोग लागू होने के बाद लगभग सभी विभागों में सफाई का काम ठेके पर दे दिया गया। जिसके कारण इस पेशे में फंसे लोगों का जीवन बद से बदतर हो गया। आम आदमी पार्टी ने जब इन सभी को नियमित करने का वायदा किया तो ये इससे जुड़ गए और जिताकर सत्ता तक ले आए और अब मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल इस मुद्दे पर चुप्पी साधे हुए हैं।

इस समय भ्रष्टाचार के खिलाफ पूरे देश में माहौल है। अन्ना हजारे और आम आदमी पार्टी इसके प्रतीक बन गए हैं। विशेष रूप से नौजवान बड़े आशावान हो गए हैं कि अब उनके भविष्य उज्जवल होने वाले हैं और बेईमानों का सफाया। इस सपने को मूल रूप से मीडिया ने दिखाया। जब कोई लहर चलती है तो उस समय दूसरे पक्ष की बात कम ही सुनी जाती है। निश्चित तौर से भ्रष्टाचार बड़ी समस्या है। जिस भ्रष्टाचार की बात इस समय चल रही है वह आर्थिक है, जबकि हमारे समाज में सामाजिक और धार्मिक भ्रष्टाचार उससे भी बड़ा है। संसद ने लोकपाल बना दिया है लेकिन उसमें रिश्वत लेने वाले पर प्रतिबंध लगा है देने वाले पर नहीं। अपने बहुजन लोकपाल में उद्योगजगत्, मीडिया एवं एनजीओ का भ्रष्टाचार शामिल किया था और केजरीवाल पर भी दबाव बनाया लेकिन वे नहीं किए क्यों ? लोकपाल में आरक्षण हमारी वजह से हुआ लेकिन इन्होंने उसका विरोध किया। देश की जनता की नजर में अधिकारी और नेता ही भ्रष्ट हैं और उद्योग जगत, जज, दलाल, वकील एवं एनजीओ और मीडिया आदि भ्रष्टाचार में जैसे शामिल ही न हों।

इस आंदोलन के समर्थक दलित, आदिवासी और पिछड़े भी हैं। आम आदमी पार्टी को दिल्ली में 29 प्रतिशत दलित वोट मिला। शायद ही कोई दलित-आदिवासी सड़क, पुल, भवन, शराब का ठेकेदार, कोयला और खनिज के व्यापारी, आयकर दाता, हथियार का व्यापारी, बिक्री कर दाता, उत्पाद एवं सीमा शुल्क दाता हो। एक भी टेलीकॉम कंपनी के मालिक नहीं, न ही बिल्डर और कॉन्ट्रैक्टर हैं। निजी शिक्षण संस्थान, कॉरपोरेट हाउस, मीडिया हाउस, बड़े एनजीओ, हुंडी और हवाला व्यापारी और आयातक और निर्यातक होने का प्रश्न ही नहीं उठता है। अधिकारियों एवं नेताओं को इन्हीं लोगों के द्वारा रिश्वत और गलत नीतियां बनवाई जाती है। बिजली या कर की चोरी भी इन्हीं में से करते हैं। ऐसे में इस आंदोलन में दलित-आदिवासी का शामिल होने का क्या मतलब है ? दलित समाज से भी नेता और अधिकारी हैं लेकिन मलाईदार विभाग और पद पर प्रायः ये नहीं होते। दिल्ली में आप की सरकार बनी तो दो दलित मंत्री बने जो मलाईदार विभाग माने ही नहीं जाते। इनके पास समाज कल्याण, महिला और बाल, अनुसूचित जाति और जनजाति और रोजगार और सवर्ण मंत्रियों के पास सभी मलाईदार विभाग दिए गए, जैसे – परिवहन, पीडब्ल्यूडी, गृह, वित्त, योजना, पावर, सर्विस, शिक्षा, राजस्व, खाद्य एवं आपूर्ति, पर्यावरण, पर्यटक, प्रशासन, स्वास्थ्य, उद्योग आदि। कमोबेश पूरे देश में विभागों एवं पदों का वितरण इसी ढ्रें पर होता है। अपवाद को छोड़कर इन वर्गों की कितनी सीमित भूमिका भ्रष्टाचार करने में है यह जानना मुश्किल नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि इन्हें मौका मिले तो भ्रष्टाचार नहीं करेंगे लेकिन हां पीढ़ियों से अनुभव और पाचन शक्ति नहीं होने की वजह से वे उतना नहीं कर पाएंगे और करेंगे भी तो शोर ज्यादा होगा और पकड़े भी जाएंगे।

यक्ष प्रश्न यह उठता है कि क्या इनको भ्रष्टाचार मिटाने की मुहिम में शामिल नहीं होना चाहिए ?शामिल होना चाहिए क्योंकि इसका संबंध महंगाई, विकास और राष्ट्रीयता से है लेकिन इनका स्वयं का विकास भागीदारी जैसे दूसरे आंदोलनों से होगा। जिसके पास जमीन, व्यापार, उद्योग, संस्थान, मीडिया, शेयर एवं वित्त क्षेत्र में भागीदारी, ठेका, कोयला एवं अन्य खनिज, खादान आदि हैं ही नहीं तो कहां से आर्थिक मजबूती होगी और देश की मुख्यधारा में शामिल हो सकेंगे ? भ्रष्टाचार मिटाने वाला आंदोलन का संबंध इनकी भागीदारी और सम्मान से लगभग नहीं के बराबर है। इनमें से ज्यादातर यदि भ्रष्टाचार के शिकार हैं तो छोटे पैमानों पर और अपने हकों के लिए, जैसे राशन कार्ड, जन्मतिथि प्रमाणपत्र, जाति प्रमाण पत्र आदि प्राप्त करने के लिए न कि बड़ा लाभ लेने के लिए। भ्रष्टाचार मिटाने की आंधी आने से सामाजिक न्याय और भागीदारी की बात दब गई है। अनुसूचित जाति/जनजाति संगठनों का अखिल भारतीय परिसंघ की रैली गत् 16 दिसंबर को दिल्ली के जंतर-मंतर पर हुई कि संसद में पदोन्नति में आरक्षण देने एवं आरक्षण कानून बनाने के विधेयक को पास किया जाए। अब न खाली पदों पर भर्ती पर चर्चा है, निजी क्षेत्र में आरक्षण देने की बात भी दब गई, सफाई काम में ठेकेदारी प्रथा की समाप्ति एवं कर्मचारियों को नियमित करने की आवाज कमजोर पड़ गयी, अत्याचार एवं जुल्म हो रहे हैं, अब वह भी गौण हैं। अन्य क्षेत्र जैसे उच्च न्यायपालिका, ठेका, भूमिहीनों को भूमि, उद्योग और मीडिया में भागीदारी की बात को उठाया भी जाए तो कहां प्राथमिकता मिलने वाली है ?

2 अगस्त, 2008 को ताप्ती छात्रावास, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में अरविंद केजरीवाल ने यूथ फॉर इक्वालिटी की सभा आरक्षण के विरोध में की थी। इनके उभार के पीछे मनुवादी मीडिया है एवं सवर्ण नौजवान जो आरक्षण से बहुत ही नफरत करते हैं। आप पार्टी का उभार हाल ही में हुआ है तो दलित, आदिवासी एवं पिछड़े भी खुश हैं, लेकिन याद रखें कि अब इनकी भागीदारी की बात दब ही नहीं गयी है बल्कि आगे जो अधिकार हैं, वे भी खत्म हो जाएंगें। अरविंद केजरीवाल स्वयं वैश्य समाज के व्यक्ति हैं और उनकी टीम में सभी सवर्ण और आरक्षण विरोधी हैं। जब डॉ0 बी. आर. अम्बेडकर दलित समाज की मुक्ति के लिए संघर्षरत् थे तो गांधीजी पंचकुंइया रोड, दिल्ली के वाल्मीकि बस्ती में डेरा जमाकर कहा कि मल-मूत्र उठाने वाले वीर होते हैं। उस मार से अभी तक वाल्मीकि समाज उठ नहीं पाया और अब फिर से दूसरा बनिया – केजरीवाल के जाल में फंस रहा है, जो दलित और आरक्षण विरोधी है। विशेष रूप से वाल्मीकि समाज का वोट जिन मांगों पर इन्होंने लिया है, अगर वे 6 फरवरी, 2014 तक पूरी नहीं करते हैं तो हम 10 फरवरी, 2014 को हजारों-हजार की संख्या में सफाई कर्मचारी एकत्रित होकर मुख्यमंत्री का घेराव करेंगें और अपनी मांगों को मनवाने के लिए बाध्य करेंगें।

16 दिसंबर के आरक्षण रैली का सच

रवि प्रकाश

16 दिसंबर, 2013 को दिल्ली के जंतर-मंतर पर रैली हुई। इस रैली में पांव तक रखने की जगह नहीं थी। हजारों दलित जगह के अभाव में सभा स्थल पर डॉ. उदित राज जी को देख भी नहीं पा रहे थे। बस इधर-उधर आस-पास घूमते हुए उनकी बात सुनकर ही संतुष्ट हो रहे थे। दलितों के आरक्षण की मांग के लिए यह एक बड़ी रैली थी। मगर इसे किसी भी मीडिया ने कवर नहीं किया। हमें इसी भेदभाव के खिलाफ संघर्ष करना है। किसी भी न्यूज चैनल पर हमारी रैली को उचित कवरेज नहीं दिया गया, इसी अन्याय के विरुद्ध लड़ना है। दलितों के साथ हर स्तर पर हर जगह भेदभाव किया जा रहा है।

रैली स्थल पर हमें जगह कम पड़ गयी। हमें पूरी जगह नहीं दी गयी। हमारे हजारों व्यक्ति रैली स्थल पर आवाज सुनते हुए पहुंचे कि रैली कहां हो रही है। जंतर-मंतर का फ्रंट आधुनिकता में डूबे डिस्कों की धुन पर नाच-नाचकर संदेश देने वालों को दे दिया गया था। तीव्र म्यूजिक और लड़कियों का नाच वहां चल रहा था। उससे भ्रम पैदा हो रहा था कि रैली कहां है और हम रैली स्थल ढूंढ़ते हुए कई सौ मीटर घूमकर वहां पहुंच पाये।

एक तरफ 16 दिसंबर निर्भया कांड की बरसी पर कैंडल मार्च का आहवान था तो दूसरा मार्ग उसने घेर रखा था। दलित अपनी रैली में पहुंच जाये तो ठीक, न पहुंचे तो ठीक और उस पर एक मुट्ठी निर्भया कांड के लोगों को लाइव कवरेज हर चैनल द्वारा। वहीं डॉ. उदित राज जबरदस्त भीड़ के साथ दलितों की मांग उठा रहे थे, आरक्षण की मांग कर रहे थे लेकिन वहां पर कोई कवरेज नहीं। यदि इसका नकारात्क अर्थ निकालें तो हमारी रैली को बाधा पहुंचाने के लिए यह व्यवस्था की गयी थी और इससे भ्रम हुआ भी और हमारे हजारों लोग इधर-उधर भटकते रहे।

अगर इसका सकारात्मक अर्थ भी निकालें तो नकारात्मकता पर ना जायें। प्रशासन सोच रहा था कि दलितों की रैली है, 1000-2000 आदमी इकट्ठा होंगे जो रो-पीटकर चले जाएंगे। आज के समाज में हमारे लिए यही स्थिति और सोच बन कर रह गयी है।

इस रैली से कई सियासी पार्टियों की नींद हराम हो गयी होगी। डॉ. उदित राज ने भारतीय जनता पार्टी और कांग्रेस दोनों को आरक्षण में समर्थन देने के लिए आमंत्रित किया था। यह हमारे नेता की दूरदर्शिता है कि कांग्रेस और बीजेपी दोनों में से जो हमारा समर्थन चाहता है वो हमारे लिए पहले कार्य करे। हमारे समाज के हित के लिए-दलितों के आरक्षण के लिए खेला गया एक सही राजनीतिक दांव था। पहले हमारे लिए करो, फिर दलित आपके साथ आ सकता है। इस रैली से एक बड़ा संदेश सवर्णों को गया कि दलित अब बेवकूफ नहीं रहा।

एक और बात कि इस रैली स्थल के पास कुछ लोग खड़ा होकर कह रहे थे कि साला चमारों की रैली हैं। कभी भी इस बात पर नाराज न हों। यह साला शब्द अपने लिए सम्मान का शब्द समझें। इसे श्री की तरह लें जैसे श्री अरविंद केजरीवाल, श्री राहुल गांधी व अन्य। ऐसे ही साला गिट्टल, साला चमार, साला दलित। जब हम लोगों की एकता, तरक्की और संगठन देखकर देश के एक वर्ग विशेष के दिल में कांटा सा चुभता है, एक टीस सी उभरती है तब हमारे लिए यह साले (श्री) की उपाधि निकलती है और जिन-जिनके लिए यह उपाधि निकलती है वही हमारे भाई हैं। उदाहरण के तौर पर साला भंगी, साले दलित, साले मुसलमान, साले चमरटे, साले मुल्ले एवं अन्य।

बस यह समझ लें कि इस देश में भाई कौन है मुसलमान और दलित। धन्यवाद मनुवादियों, आप की गाली हमारी एकता का कार्य करेगी, हमें संगठित करने का कार्य करेगी।

अनुसूचित जाति आयोग जैसा ही होगा लोकपाल का हश्र?

अमित सिंह

संसद के दोनों सदनों से मंजूरी मिलने के बाद आखिरकार देश को पाँच दशक बाद भ्रष्टाचार से लड़ने के लिये बहुप्रतीक्षित लोकपाल मिल गया। आज का सवर्णपरस्त समाज अन्ना को दूसरे महात्मा की उपाधि देने लगा। यह किसका लोकपाल है? सरकार का या फिर अन्ना का? पता नहीं ! फिर भी चालीस साल से इसकी माँग हो रही थी क्यों? अन्ना को जो अनशन करने पड़े? सांसदों को आधी-आधी रात तक माथापच्ची करनी पड़ी। और अब जब यह बन गया है, अन्ना कह रहे हैं कि यह लोकपाल जिसका भी है, अच्छा है। कम से कम चालीस-पचास फीसदी भ्रष्टाचार तो इससे कम हो ही जायेगा। बताते हैं कि राहुल ने इस मामले में अगुवाई की। अब अन्ना कम से कम लोकपाल को लेकर तो अनशन नहीं करेंगे। बाकी की देखी जायेगी। अन्ना अब राहुल की तारीफ करते नहीं थक रहे हैं।

वैसे लोकपाल का जो भी स्वरूप सामने आया है, उसमें पता चल रहा है, कि यह तो कोई जेल भेजने वाला कानून भर है। मगर इसमें गलत शिकायत पाये जाने पर सजा और जुर्माने का जो प्रावधान किया गया है, उसे लेकर आम आदमी की चिन्ता वाजिब लगती है। अगर लोकपाल जेल भेजने के लिये ही बनना था, तो उसके लिये तो पहले ही बहुत से कानून थे। बेचारे लालू तो बिना लोकपाल के ही कई बार जेल हो आये हैं। राजा, कनिमोझी, कलमाड़ी भी बिना लोकपाल के जेल हो आये हैं। अरविंद केजरीवाल ने साफ हाथ झाड़ लिये हैं कि जी, हमारा वाला तो है नहीं और अन्ना जी वाला तो बिल्कुल भी नहीं है। वह तो जनलोकपाल था। पर यह तो जोकपाल है। इससे नेता तो क्या चूहा भी जेल नहीं जा पायेगा।

यह जानकर चूहे मस्त हैं। अब वे सरकारी गोदामों का अनाज एकदम तनावमुक्त होकर चट कर सकते हैं। लेकिन अन्ना कह रहे हैं कि चूहा तो क्या, इससे तो शेर भी जेल जायेगा। इससे शेर बेचारे और डर गये हैं। शिकारियों-तस्करों के चलते जिन्दगी तो उनकी पहले ही खतरे में थी, पर अब तो देर-सबेर जेल भी जाना पड़ेगा। नेताओं ने समझा था कि लोकपाल उनके खिलाफ है, लेकिन उन्हें लोकपाल मिल गया। इस चक्कर में राजनीति थोड़ी-बहुत उनके हाथ से खिसक गयी हो। यानी जो जिसको नहीं चाहिए था, वही उन सबको मिला।

लोकपाल पर अन्ना और केजरीवाल के बयानों और सोच में जमीन-आसमान का अन्तर है। इस अन्तर की समीक्षा में जब हम अन्य संवैधानिक संस्थाओं के गठन के पूर्व के संघर्षो, घोषणाओं, नियमों और उसके अमल करने के तरीकों पर आते हैं तो केजरीवाल की बातों में कुछ दम नजर आने लगता है।

उल्लेखनीय है कि समाज के सबसे पीड़ित तबके अनुसूचित जातियों एवम् जन जातियों के कल्याण के लिये संविधान के अनुच्छेद 338 के तहत गठित एक सदस्यीय आयोग सन् 1951 से कार्य कर रहा था जिसे अनुसूचित जातियों एवम् जन जातियों के आयुक्त के नाम से जाना जाता था। उसका कार्यकाल 5 वर्ष का होता था। उसके स्तर को ऊँचा उठाने तथा विस्तृत अधिकार देने के लिये जनता पार्टी के शासन काल में सन् 1978 में कार्यकारी आदेश के तहत भोला पासवान शास्त्री की अध्यक्षता में 5 सदस्यीय बहुसदस्यीय आयोग बनाया गया। उसे संवैधानिक दर्जा देने एवम् शक्तिशाली बनाने के लिये सत्तारूढ़ दल के साथ हीं साथ विपक्षी दलों एवम् दलितों के उदीयमान नेता राम विलास पासवान ने लगातार ऐड़ी-चोटी का जोर लगाया, आन्दोलन प्रदर्शन किया। बहुसदस्यीय आयोग को 65वें संविधान संशोधन द्वारा सन् 1992 में संवैधानिक दर्जा एवम् संवैधानिक अधिकार मिला और आयुक्त का पद विलोपित हो गया।

यहाँ केन्द्र की सरकार ने संविधान के विरूद्ध चुपके से नियमावली बनाते समय आयोग के कार्यकाल को 5 वर्ष से घटाकर 3 वर्ष और उसमें राजनीतिक व्यक्ति को भी आयोग में पदस्थापित करने का प्रावधान डाल दिया। जबकि संविधान के अनुच्छेद 338 का अवलोकन करने पर पता चलता है कि इसमें कहीं भी राजनीतिक नियुक्ति का प्रावधान नहीं है। जब कुछ लोगों और संगठनों द्वारा आयोग के अध्यक्ष और सदस्यों के दलीय राजनीति में भाग लेने का मामला उठाया गया तो सरकार ने मंत्रिमण्डल से राजनीतिक नियुक्ति के समर्थन में नियमावली बनवा ली, जिसके कारण यह आयोग व्यवहार में अपनी प्रभावशीलता, निष्पक्षता, पारदर्शिता और उपयोगिता को खो चुका है।

उदीयमान नेता राम विलास पासवान, उदित राज और दलितों के बड़े प्रतिनिधियों ने सरकार से मिली भगत कर ली और इसके विरूद्ध कोई आवाज नहीं उठायी। उस उदीयमान नेता को भी कल्याण मन्त्रालय (अब सामाजिक न्याय और अधिकारिता मन्त्रालय) का प्रभार मिला। पर आयोग की बंधुआ आयोग वाली स्थिति पर कोई अन्तर नहीं आया। आज सैद्धान्तिक तौर पर अनुसूचित जातियों और जन जातियों के लिये बनाया गया शक्तिशाली आयोग व्यवहार में सत्तारूढ़ दल का (चाहे कांग्रेस, भाजपा या अन्य दल) अनुसूचित जाति/जनजाति प्रकोष्ठ(सेल) के रूप में बंधुआ मजदूर आयोग बन कर रह गया है। नियमतः आयोग को स्वायत्त, निष्पक्ष और पारदर्शी बनाया गया है। इसे सिविल कोर्ट के अधिकार दिये गये हैं। इसे प्रतिवर्ष अपनी वार्षिक रिपोर्ट तथा बीच में भी आवश्यकतानुसार कोई रिपोर्ट देने का अधिकार है तथा राष्ट्रपति को ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद और सम्बंधित विधान सभाओं में एक्शन टेकेन रिपोर्ट के साथ रखवाने और चर्चा करने का संवैधानिक अधिकार है। पर यह वार्षिक रिपोर्ट भी चार-पाँच साल के अन्तराल पर ही दी जाती है और उसे भी सरकार चार-पाँच साल तक अपने पास रखे रहती है। पर व्यवहार में आज पी. एल. पूनिया कांग्रेस सांसद, बाराबंकी को राष्ट्रीय आयोग का अध्यक्ष नियुक्त कर सरकार द्वारा संवैधानिक प्रावधानों की खुलेआम धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं। पूनिया राष्ट्रीय आयोग को कांग्रेस पार्टी के सेल के रूप में बखूबी इस्तेमाल कर रहे हैं।

आज तक किसी भी राजनीतिक पार्टी और दलितों के किसी भी सामाजिक राजनीतिक संगठन ने इसका सक्रिय रूप से विरोध नहीं किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सभी नेता इस कुर्सी पर देर सबेर बैठने की आश लगाये बैठे हैं। राष्ट्रीय आयोग के बारे में ''पिंजरे का शेर है राष्ट्रीय अनुसूचित जाति/जन जाति आयोग'' सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण शोधपरक आलेख ''सम्यक भारत'' नई दिल्ली मासिक पत्रिका के अक्टूबर 2013 अंक में प्रकाशित हुआ था। यह आलेख सरकार की दुर्भावना और राजनीतिक दलों की चुप्पी को बड़े ही सिलसिलेवार ढँग से उजागर करता है, जो चौंकानेवाला है।

आज हमें राष्ट्र को सार्थक दिशा में ले जाने के लिये नेक-नियत, इच्छाशक्ति और आत्मबल की जरूरत है। जहाँ तक लोकपाल बिल की बात है यह लोकपाल को जाँच, अभियोजन और दण्ड के अधिकार देता है। कुछ लोग इसे लोकतंत्र और देश की सम्प्रभुता के लिये खतरा कहते हैं और यह अनुच्छेद 245 के तहत भारत के संविधान के खिलाफ है। अन्तर्राष्ट्रीय फंडिंग से ताकतवर बने कुछ एनजीओ वालों ने मीडिया और ग्लोबलाईजेशन की अर्थनीति से ताकतवर मध्यम वर्ग के रूप में उभरे प्रभुवर्ग की संतानों के सहयोग से जिस तरह भ्रष्टाचार के खातमे की आड़ में लोगों को भ्रमित कर बहुजन राजनीति को हाशिये पर पहुँचाने का काम किया है वह विचारणीय है। लोकपाल के पीछे छिपा एजेण्डा राजनीतिक प्रणाली के रूप में लोकतंत्र का निजीकरण है। देश इस समय दोराहे पर खड़ा है। राजनीतिक लोग अपना स्वार्थ तलाश रहे हैं! इसके अलावा लोकपाल के सामने आने वाले मामलों को यदि समयबद्ध तरीके से नहीं निपटाया जा सका, तब तो स्थिति हमारी अदालतों जैसी ही हो जायेगी, जहाँ आज तीन करोड़ से अधिक मामले वर्षो से लम्बित हैं! मगर यह छद्म आभास क्या लोगों की सोच को बदल सकता है या वे अपनी समझ और अनुभव पर यकीन करेंगे? उपर्युक्त पर नजर डालने पर अतीत का अनुभव बताता है कि क्या लोकपाल के साथ भी ऐसा ही होगा ? क्या केजरीवाल की बात सच होने जा रही है ?

(साभार : हस्तक्षेप डॉट कॉम)

समाज में या तो अंधभक्ति है या नकारात्मकता। लेखक ने मुझे भी घसीट लिया है कि मैं अनुसूचित जाति आयोग का जब 1992 में पुनर्गठन हो रहा था तो उस समय इसकी मजबूती बरकरार रखने के लिए किसी भी क्षेत्र से व्यक्ति इसका सदस्य या अध्यक्ष बन सकता था लेकिन उस समय मैंने भी सरकार का सहयोग देकर राजनैतिक लोगों का आयोग बनवा दिया। कितना भी मैं ईमानदारी से समाज के लिए काम करूं, एक बड़ी शक्ति द्वारा मेरे खिलाफ षड्यंत्र होता ही रहता है। 1992 में मैं ताजा-ताजा ही सहायक आयकर आयुक्त नियुक्त हुआ था और उस समय न तो सामाजिक और न ही राजनैतिक बात से लेना-देना था तो कैसे मैं इसके लिए जिम्मेदार हूं? अगर अनुसूचित जाति/जनजाति संगठनों का अखिल भारतीय परिसंघ समय पर संघर्ष न करता तो लोकपाल में आरक्षण न होता और यह निर्बलों के लिए जेलपाल होता। लेखक और समाज के बड़े तबके ने इसका श्रेय नहीं दिया, इसका हमें दुःख है। फिर भी लेख पढ़ने लायक है।

-डॉ. उदित राज
राष्ट्रीय अध्यक्ष,
अनुसूचित जाति/जनजाति
संगठनों का अखिल भारतीय परिसंघ

Appeal to the Readers

You will be happy to know that the **Voice of Buddha** will now be published both in Hindi and English so that readers who cannot read in Hindi can make use of the English edition. I appeal to the readers to send their contribution through Bank draft in favour of **'Justice Publications'** at T-22**,** Atul Grove Road, Connaught Place, New Delhi-110001. The contribution amount can also be transferred in 'Justice Publications' Punjab National Bank account no. 0636000102165381 branch Janpath, New Delhi, under intimation to us by email or telephone or by letter. Sometimes, it might happen that you don't receive the Voice of Buddha. In that case kindly write to us and also check up with the post office. As we are facing financial crisis to run it, you all are requested to send the contribution regularly.

Contribution:
Five years : Rs. 600/-
One year : Rs. 150/-

श्रद्धांजलि

नेल्सन रोलिहलाहला मंडेला : 18 जुलाई 1918 – 5 दिसंबर 2013

गांधी से अधिक अम्बेडकर के नजदीक

विद्याभूषण रावत

नेल्सन मंडेला नहीं रहे। 6 दिसंबर की सुबह, जब भारत अपने संविधान निर्माता डॉ. अम्बेडकर को याद करने की तैयारी कर रहा था, तभी मंडेला की मृत्यु की खबर आई। मंडेला ने रंगभेद की समाप्ति के बाद के दक्षिण अफ्रीका की नींव रखी थी। पूरी दुनिया में उनकी मृत्यु का शोक मनाया जा रहा है परंतु अफ्रीकी उनके जीवन का उत्सव मना रहे हैं। पश्चिमी देश, जिन्होंने अफ्रीका और दुनिया के अन्य हिस्सों में मानवाधिकारों का जमकर उल्लंघन किया है, मंडेला का गुणगान करते नहीं थक रहे हैं।

उनको दी जा रही श्रद्धांजलियों में जो एक बात समान है वह यह कि वे इसलिए महान थे क्योंकि वे 'बदला लेने' में विश्वास नहीं रखते थे और वे 'एकीकृत' दक्षिण अफ्रीका के निर्माता थे। भारतीयों ने मंडेला को अपना मित्र बताने में देरी नहीं की। हमारे देश के राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और कई नेताओं ने बार–बार दोहराया कि मंडेला ने गांधी से बहुत कुछ सीखा था।

हम भारतीय, पश्चिमी देशों के नागरिकों से कहीं अधिक पाखंडी हैं। यद्यपि यह सच है कि जवाहरलाल नेहरू ने दक्षिण अफ्रीका की रंगभेदी सरकार की स्पष्ट शब्दों में आलोचना की थी परंतु यह भी उतना ही सच है कि हमने उस सरकार को उखाड़ फेंकने की पर्याप्त कोशिश नहीं की। हम हमारे देश के अदृश्य रंगभेद को भुलाकर अफ्रीका के बारे में ढेर सारी बातें कह सकते हैं परंतु हमारे ही लोगों को सत्ता के ढांचे में उचित प्रतिनिधित्व देना हमें मंजूर नहीं है। मंडेला को दी गई श्रद्धांजलियों से भी भारत में व्याप्त जातिगत घृणा स्पष्ट झलकती है।

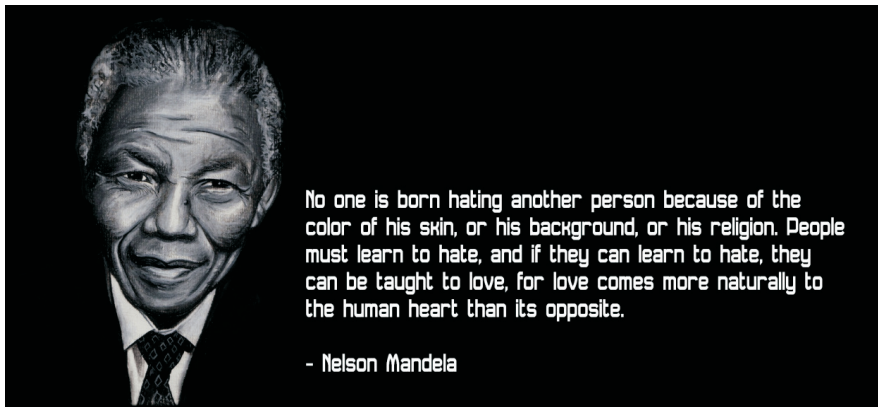

एक के बाद एक बड़े–बड़े नेताओं ने कहा कि मंडेला पर गांधीवादी मूल्यों का गहरा प्रभाव था। यह कहना मुश्किल है कि गांधी ने अफ्रीका के दिनरात कमरतोड़ मेहनत करने वाले आम अश्वेतों के लिए क्या किया। जब गांधी अफ्रीका में थे तब भी उनका संघर्ष अश्वेतों के लिए नहीं वरन् वहां के भारतीय समुदाय के लिए था, जिनमें से अधिकांश गुजराती व्यवसायी थे। वे आज भी अफ्रीका के बड़े हिस्से में प्रभावशाली हैं और गोरों से कम नस्लवादी और जातिवादी नहीं हैं।

दूसरे, भारत में दक्षिण अफ्रीका की तुलना में कहीं बड़े पैमाने पर भेदभाव होता है। भारत के लगभग 16 करोड़ नागरिक अदृश्य रंगभेद के शिकार हैं, जिसे 'दैवीय' स्वीकृति प्राप्त है। संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद, इनके अधिकारों की रक्षा करने में हम अक्षम रहे हैं और उनके साथ अन्याय बहुत आम है। मंडेला सन् 1990 में भारत आए थे। वह स्वाधीन भारत का सबसे उथलपुथल भरा साल था। उस साल ओबीसी को आरक्षण देने की पुरानी मांग पूरी हुई थी और समाज के हाशिए पर पटक दिए गए एक तबके को शासन व्यवस्था में हिस्सेदारी करने का मौका मिला था। उसी साल भारत के संविधान निर्माता को सरकार ने देश के सर्वोच्च सम्मान भारत रत्न से सम्मानित किया। वी.पी. सिंह सरकार ने बाबा साहब अम्बेडकर और नेल्सन मंडेला को एक साथ भारत रत्न से विभूषित किया। भारत रत्न से विभूषित लोगों की सूची में ये दो नाम अलग नजर आते हैं क्योंकि अधिकतर मामलों में इन पुरस्कारों का प्रयोग, श्रेष्ठी वर्ग अपने हितों की रक्षा के लिए करता रहा है। सन् 1990 में पहली बार ऐसा लगा कि सही लोगों को भारत रत्न दिया गया है।

इसके बाद भी हमारे किसी विश्लेषक या टिप्पणीकार ने अम्बेडकर की पुण्यतिथि 6 दिसंबर को भी, मंडेला और अम्बेडकर के बीच समानताओं की चर्चा नहीं की। अम्बेडकर ने अकेले दलितों के अधिकार की लड़ाई लड़ी। ये दलित आज भी भेदभाव और पूर्वाग्रहों के शिकार हैं। प्रधानमंत्री ने गांधी का नाम लिया क्योंकि हमारे देश में हर नेता के लिए गांधी और नेहरू का नाम जपना अनिवार्य है। इन दोनों के नाम पर अनेक पुरस्कार स्थापित किए गए हैं। अगर मंडेला को अम्बेडकर को पढ़ने का समय मिला होता तो मुझे विश्वास है कि वे अम्बेडकर के लंबे संघर्ष की सराहना करते। अगर दक्षिण अफ्रीका के अश्वेत आज भी परेशानियां भोग रहे हैं और अगर भारत के दलितों को आज भी गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार नहीं है तो फिर तथाकथित 'सत्ता हस्तांतरण' व 'समावेशी प्रजातंत्र' का क्या अर्थ है? तथ्य यह है कि सत्ताधारी श्रेष्ठी वर्ग ने 'समावेशी प्रजातंत्र' को एक ऐसी व्यवस्था में बदल दिया है जिसमें सत्ता, प्राकृतिक संसाधनों और देश की संपदा पर केवल उनका अधिकार हो गया है।

अब, जब कि मंडेला नहीं रहे, यह जरूरी है कि हम उन्हें भगवान न बनाएं। उनकी विरासत की आलोचनात्मक विवेचना आवश्यक है ताकि उन्होंने जो स्वाधीनता आंदोलन चलाया था, उसे सिर्फ 'माफ करो और भूल जाओ' के खांचे तक सीमित न कर दिया जाए।

(साभार : फारवर्ड प्रेस)

सोशल मीडिया का उपयोग करें दलित-बहुजन

उत्तर भारत के मीडिया पर दलित–बहुजन तबकों की ओर से लगातार यह आरोप लगते रहे हैं कि यहां उनकी बात नहीं सुनी जाती। बड़े मीडिया घरानों के पत्रकार इस कदर जातिवादी मानसिकता से ग्रस्त होते हैं कि वे आदिवासियों, दलितों, पिछड़ों और मुसलमानों पर हुए जुल्म की खबरों का मजाक उड़ाते हैं। ये स्थिति प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक दोनों माध्यमों में समान रूप से देखी जा सकती है। उदाहरणस्वरूप, देश में दलित–बहुजन तबके की महिलाओं के साथ रोजाना सैकड़ों बलात्कार और जबरदस्ती की घटनाएं होती है लेकिन इन खबरों को कहां दबा दिया जाता है पता ही नहीं चलता, लेकिन वहीं यदि किसी सवर्ण और कुलीन महिला के साथ जबरदस्ती की जाती है तो मीडिया आसमान को सर पर उठा लेता है। क्या यहां भारतीय मीडिया का अंतर्विरोध साफ–साफ नहीं दिख जाता? कुछ विशेषज्ञों की राय– (साभार : फारवर्ड प्रेस)

सबसे पहले मैं इस आरोप से अक्षुब्ध हूं। शायद यह सब कुछ हमने आरोप–प्रत्यारोप की राजनीति से सीखा है। इस देश का मीडिया और उसका बुद्धिजीवी तबका भी छाया युद्ध लड़ रहा है। शिक्षाविद् कृष्ण कुमार के शब्दों में कहूं तो इस देश का पढ़ा–लिखा नागरिक ज्यादा सांप्रदायिक, धर्मांध, जातिवादी है, बजाय गरीब अनपढ़ों के, क्योंकि उन्होंने इन आरोपों को गढ़ने–मढ़ने के लिए तथ्य इकट्ठे नहीं किए हैं। मीडिया में काम करने वाले तो समाज के सबसे समझदार बुद्धिजीवी होते हैं, उन्हें तो सबसे पहले ऐसे विभाजन के खिलाफ आवाज उठानी चाहिए। समाज के दलित–पिछड़े और सबसे ऊपर गरीब को आगे लाने के लिए विशेष प्रयास, विशेष रियायतों की जरूरत है। यदि मीडिया भी दलित, बहुजन, ब्राह्मण, सिया, सुन्नी, बिहारी, हरियाणवी, गुजराती के खाने में बंटा तो इस देश का कोई भविष्य नहीं है और न ही मीडिया का भविष्य है। इस प्रसंग में 'इंडिया टुडे' के ताजा अंक (11 दिसंबर, 2013) में तहलका प्रकरण पर तसलीमा नसरीन की टिप्पणी गौर करने लायक है – 'राजनेताओं या कट्टरपंथियों के पथभ्रष्ट होने से देश का नुकसान उतना नहीं होता जितना बुद्धिजीवियों के पथभ्रष्ट होने से होता है।' मीडिया के बुद्धिजीवी जातिवाद से दूर नहीं हुए तो खुदा मालिक है।

-प्रेमपाल शर्मा
वरिष्ठ कहानीकार, विचारक

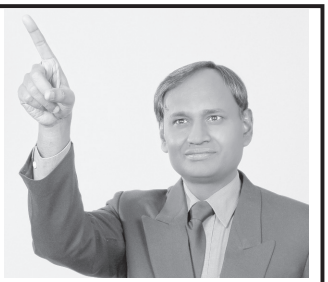

यह बात एकदम सही है कि मीडिया में दलितों की खबरों को जगह ही नहीं मिलती है। मीडिया ने 'आप' को मोदी के बराबर जगह दे रखा है जबकि दलित समाज के लिए उसके पास जगह नहीं है। हमें सोशल मीडिया के माध्यम से अपनी बात को रखना होगा। सामाजिक न्याय को लेकर मीडिया का रवैया बहुत खराब है। दलितों को अपनी बात रखने के लिए मीडिया हाउस की जरूरत तो है ही।

-उदित राज
राष्ट्रीय अध्यक्ष,
इंडियन जस्टिस पार्टी

समीक्षा

महिषासुरः पुनर्पाठ की क्यों जरुरत है?

राजकुमार राकेश

'बलिजन कल्चरल मूवमेंट के तत्वाधान में प्रकाशित पुस्तिका ''किसकी पूजा कर रहे हैं बहुजन? महिषासुरः एक पुनर्पाठ'' मेरे सामने है। तकरीबन चालीस पृष्ठों की इस सामग्री को मैने दो–ढाई घंटे के अंतराल में पढ़ लिया। मगर इस छोटे से अंतराल ने मेरे भीतर जमे अनगिनत टीलों को दरका दिया है। फारवर्ड प्रेस के प्रबंध संपादक प्रमोद रंजन द्वारा संपादित इस पुस्तिका को 17 अक्टूबर, 2013 को दिल्ली के दिल्ली की ख्यात जवाहर लाल नेहरू यूनिवर्सिटी में 'बैकवर्ड स्टूडेंटस फोरम' द्वारा आयोजित 'महिषासुर शहादत दिवस' पर जारी किया गया था। पुस्तिका में प्रेमकुमार मणि, अश्विनी कुमार पंकज, इंडिया टुडे (हिंदी) के प्रबंध संपादक दिलीप मंडल समेत 7 प्रमुख लेखकों, पत्रकारों व शोधार्थियों के लेख हैं।

जिस दिन मैंने इस पुस्तिका को पढ़ा, उसी दिन शाम को टी.वी. के एक चैनल पर दिल दहला देने वाला एक दृश्य था। उत्तरी कोरिया के तानाशाह किम जोंग ऊन ने अपने फूफा और उसके छह साथियों को तीन दिन से भूखे रखे गए एक सौ बीस शिकारी कुत्तों को परोस दिया। तकरीबन एक घंटे में इन कुत्तों ने उन जिंदा मानवीय शरीरों को फाड़कर चट कर डाला। इस विशाल पिंजरे के चारों ओर की बालकनियों में खड़े दर्शक इस दौरान तालियां बजाते रहे। उनमें खुद किम जोंग ऊन भी मौजूद था। ऐसा ही एक दृश्य सद्दाम हुसैन को अमेरिका द्वारा फांसी दिए जाने का था। इन विजेताओं ने मारे जाने वालों को बर्बर, क्रूर, विद्रोही, अमानवीय घोषित किया था। यह हारे हुए लोगों के प्रति विजेता न्याय है।

यही कुछ महिषासुर के साथ किया गया था। सदियों से उसकी ऐसी अमानवीय छवियां गढी गई हैं, जो विश्वासघात से की गई उस शासक की मौत को जायज ठहराने का काम करती रही हैं। हमलावर आर्यो, जो इंद्र के नेतृत्व में बंग प्रदेश को कब्जाने के लिए यहां के मूल निवासी अनार्यो से बार–बार हारते चले गए थे, उन्होंने अंततः विष्णु के हस्तक्षेप से दुर्गा को भेजकर महिषासुर को मरवा डाला था। आर्यो (सुरापान करने वाले और पालतू पशुओं को अपने यज्ञों के नाम पर वध करके उनके मांस को खा जाने वाले सुरों) ने खुद को देवता घोषित कर दिया और बंग प्रदेश के मूल निवासियों को असुर। महिषासुर इन्हीं असुरों (अनार्यो) का बलशाली और न्यायप्रिय राजा था। ये आर्य इन अनार्यो के जंगल, जमीन की भू संपदा और वनस्पति को लूट लिए जाने और अनार्यो के दुधारु जानवरों को हवन में आहुत कर देने के लिए कुख्यात थे। महिषासुर और उनकी अनार्य प्रजा ने आर्यो के इन कुकर्मो को रोकने के लिए इंद्र की सेना को इतनी बार परास्त कर डाला कि उसकी रीढ़ ही ध्वस्त हो गई। ऐसे में इंद्र ने विष्णु से हस्तक्षेप करवाकर एक रुपसी दुर्गा को महिषासुर को मार डालने का जिम्मा सौंपा। जब दुर्गा पूरे नौ दिन और नौ रातों तक उस महल में मौजूद थी, तो सुरों का टोला उसके गिर्द के जंगलों में भूखा प्यासा छिपा बैठा, दुर्गा के वापस आने का इंतजार कर रहा था। आखिर इतने अर्से में दुर्गा ने छलबल से महिषासुर का कत्ल कर दिया।

इस पाठ की पुष्टि बंगाल में की जाने वाली नवरात्रि दुर्गा पूजा और नौ दिनों तक व्रत कर भूखे रहने के आधुनिक पाठों से होती है। हालांकि इन विजेताओं ने दुर्गा के लिए पशुबलि का प्रावधान रखा है। तर्क दिया जाता है कि यह पशुबलि दुर्गा के वाहन शेर के लिए है। बाकी वे खुद को शाकाहारी घोषित करते हैं ताकि असुरों को मांसाहारी सिद्ध करने का तर्क उनके पास मौजूद रहे।

बहुत हद तक प्रस्तुत पुस्तिका में महिषासुर दुर्गा के इसी पुनर्पाठ की प्रस्तुति है, मगर इस पर अधिकाधिक व्यापक शोध की जरुरत है, जिसके चलते बहुत से छिपे सत्य उद्घाटित होने की संभावना बनती है, जिन्हें नकारा जाना आज के आर्यपुत्रों के लिए मुमकिन नहीं रहेगा।

फिलहाल मैं धर्मग्रंथों की बिक्री की एक दुकान से 'दुर्गा सप्तशती' नामक पुस्तक लाया हूं। यह रणधीर बुक सेल्स (प्रकाशन) हरिद्वार से प्रकाशित है। इस में मौजूद पाठ हालांकि सुरों के पक्ष में लिखा गया है, मगर यह महिषासुर वध के छल छद्म और सुरों के चरित्र पर बहुत कुछ कह जाता है – ''प्राचीन काल के देवी–देवता तथा दैत्यों में पूरे सौ बरस युद्ध होता रहा। उस समय दैत्यों का स्वामी महिषासुर और देवताओं का राजा इंद्र था। उस संग्राम में देवताओं की सेना दैत्यों से हार गई। तब सभी देवताओं को जीतकर महिषासुर इंद्र बन बैठा। हार कर सभी देवता ब्रह्माजी को अग्रणी बनाकर वहां गए जहां विष्णु और शंकर विराज रहे थे। वहां पर देवताओं ने महिषासुर के सभी उपद्रव एवं अपने पराभव का पूरा–पूरा वृतांत कह सुनाया। उन्होंने कहा, महिषासुर ने तो सूर्य, अग्नि, पवन, चंद्रमा, यम और वरुण और इसी प्रकार अन्य सभी देवताओं का अधिकार छीन लिया है। स्वयं ही सबका अधिष्ठाता बन बैठा है। उसने देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया। महिषासुर महा दुरात्मा है। देवता पृथ्वी पर मृत्यों की भांति विचर रहे हैं। उसके वध का कोई उपाय कीजिए। इस प्रकार मधुसूदन और महादेव जी ने देवताओं को वचन सुने, क्रोध से उनकी भौंहे तन गईं।'' इसके बाद उन्होंने दुर्गा को महिषासुर का वध करने को भेजा। जब युद्ध चल रहा थो तो ''देवी जी ने अपने बाणों के समूह से महिषासुर के फेंके हुए पर्वतों को चूर–चूर कर दिया। तब सुरापान के मद के कारण लाल–लाल नेत्रवाली चण्डिका जी ने कुछ अस्त–व्यस्त शब्दों में कहा – हे मूर्ख! जब तक कि मैं मधुपान कर लूं, तब तक तू भी क्षण भर के लिए गरज ले। मेरे द्वारा संग्रामभूमि में तेरा वध हो जाने पर तो शीघ्र ही देवता भी गर्जने लगेंगे।'' इस धमकी के बावजूद उस दैत्य ने युद्ध करना नहीं छोड़ा। तब देवीजी ने अपनी तेज तलवार से उसका सिर काटकर नीचे गिरा दिया....देवता अत्यंत प्रसन्न हुए। दिव्य महर्षियों के साथ देवता लोगों ने स्तुतियां की। गंधर्व गायन करने लगे। अप्सराएं नाचने लगीं। बहरहाल, इस कथा में देवी का 'सुरापान' स्वयं अनेक अनुमानों को जन्म देता है!

उपरोक्त तथ्य कुछ ऐसे अंतर्निहित पाठों की सृष्टि करते हैं, जो महज एक छोटे से आलेख में नहीं निपटाए जा सकते। इसके लिए व्यापक शोध की जरुरत है। अगर इनके अर्थ संकेतों पर गौर किया जाए, तो असल में ये आज की भारतीय राजनीति का भी बहुत गंभीर पाठ प्रस्तुत करते हैं। इंद्र अगर प्रधानमंत्री था, तो ये विष्णु, शिव वगैरह कौन हैं, जिनके सामने गंधर्व गाते हैं और अप्सराएं नाचती हैं। इस व्यापक अर्थपाठ के बीच पिछड़ा, दलित, औरत और आदिवासी समाज की स्थिति के संबंध में अध्ययन और पुनर्पाठ की प्रस्तुति से कितना कुछ सामने आएगा, यह कोई कल्पना से परे की चीज नहीं है। अब तो पश्चिम पार से आने वाले आर्यो को सेना की जरुरत भी नहीं है। उनकी पूंजी ही अनार्यो को खदेड़ देने के लिए काफी है और अपने देश के शासक उस पूंजी के गुलाम बने हैं ही।

फिलहाल, मै कहना चाहता हूं कि रणेन्द्र के चर्चित उपन्यास 'ग्लोबल गांव के देवता' में वर्णित आदिवासियों, खासकर असुर जनजाति की त्रासदी को भी इन्हीं परिप्रेक्ष्यों में पड़कर व्यापक शोध में शामिल करने को कोई आदिवासी–पिछड़ा–दलित विद्वान या विदुषी आए। महिषासुर ललकार रहा है।

More in common with Ambedkar, than with Gandhi

Vidya Bhushan Rawat

Nelson Mandela is no more. In the early hours of 6 December, just as Indians were readying to remember their founding father Dr Ambedkar, came news of the demise of Mandela, the father of post-apartheid South Africa. The world over there is grief, yet Africans are celebrating his life. The Western powers are canonizing Nelson Mandela today despite their track record of violation of human rights in Africa and elsewhere.

A common point of the tributes is that Mandela was great because he did not believe in 'retribution'. He was for 'reconciliation' and is father of a 'united' South Africa. Indians lost no time in describing Mandela as their friend. The president, prime minister and all were in unison saying it out loud that Mandela had learnt so much from Gandhi.

The Indian hypocrisy is much greater than the West's. Though Jawaharlal Nehru was clear in his condemnation of South Africa's apartheid regime, it would be highly unjust to say that we did enough to eliminate that regime in Africa. To hide our own hidden apartheid, we can speak volumes on Africa but not allow our own people into the power structure. The hatred that exists in Indiatoday is clearly reflected even in the tribute to Mandela.

Leader after leader said Mandela was influenced by Gandhian values. One does not know what Gandhi did for the toiling masses of Africa. Even when Gandhi was in Africa, his struggle was not really for the blacks but for the Indian community there, which was mostly Gujarati businessmen, who remain dominant in large parts of Africa and are no less racist and casteist than their white counterparts.

Secondly, India is home to a system that is much bigger and more discriminatory than South Africa's. More than 160 million people in India suffer from a hidden apartheid that has 'divine sanction' and the constitutional framework has not been able to protect those rights which are violated every day. Yes, Mandela came to India in 1990, the most turbulent year in the history of independent India, a year in which some of the most marginalised got the right to participate in governance, with the longstanding demand of reservation for the OBCs fulfilled. It was the year when the government gave the highest honour of the land, the Bharat Ratna, to the father of the Indian Constitution. It was along with Baba Saheb Ambedkar that Nelson Mandela was also awarded the Bharat Ratna by the V. P. Singh government. These two icons stand out in the list of Bharat Ratnas, which have always been used by the power elite to promote their own people. It was for the first time we had felt that the Bharat Ratna had gone to the right people.

Yet none of our commentators, even on 6 December, Ambedkar's death anniversary, spoke of Mandela's similarities with Ambedkar, who fought single-handedly for the rights of Dalits who even today suffer prejudices and discrimination. The prime minister mentioned Gandhi since it is a ritual for every Indian leader to acknowledge Gandhi and Nehru as a part of the power structure. There are awards and ceremonies in their names. If Mandela had time to read Ambedkar, I am sure he would have appreciated his struggle. If the black population in South Africa still suffers and Dalits in India are still asking for basic human dignity, then what is the meaning of the so-called 'transfer of power' and 'inclusive democracy'? The fact is that the power elite have manipulated 'inclusive' democracy very well to validate their 'exclusive' rights over our natural resources, our finances and our power structure.

Now that Mandela is no more, it is essential that we do not deify him. Let there be a critical analysis of his legacy so that the liberation movement that he launched is not glossed over by just forgiveness and forgetfulness.

(Courtesy: Forward Press, January,2014)

VOICE OF BUDDHA

Publisher : Dr. UDIT RAJ (RAM RAJ), Chairman - Justice Publications, T-22, Atul Grove Road, Connaught Place, New Delhi-110001, Tel: 23354841-42

● Year : 17 ● Issue 4 ● Fortnightly ● Bi-lingual ● 1 to 15 January, 2014

Corruption Vs Participation in Governance

Dr. Udit Raj

At present, atmosphere against corruption is at its peak all over the country. Anna Hazare and Aam Admi Party have become symbols of this movement.The youth of the country is particularly excited about it and is quite optimistic that his days are coming and no longer corruption will exist. The main force behind this dream is Media. Whenever there is a wave for a particular movement, then at that time the other side of the issue is rarely given any importance. In this article, an attempt is being made to put across the other side of the facade. Decidedly, corruption is a big problem. At present, economic corruption has become the main issue where in our society, social and religious corruption is equally rampant.

The Parliament has passed the Lokpal Bill and anti graft law has been imposed on demand side and there is nothing to stop supply, i.e., bribe taker is punished and giver enjoys freedom. The protagonists of this movement have turned ire against politicians and Govt employees and are skeptic about sources of graft like corporate house, media and NGO and such others. Now in the eyes of the public, it is only the bureaucrats and the political leaders who are corrupt as if the corporate houses, judges, mediators , brokers, lawyers, NGOs and the Media do not indulge in corruption.

Dalits, Adivasis and Backwards also support of this campaign out of ignorance. Aam Admi Party has got 29% dalit votes in Delhi Assembly elections. There may hardly be any Dalit or Adivasi who is a big road or building contractor, liquour contractor, coal mines trader, income tax , sales tax or excise duty payer. No Dalit or Adivasi owns a telecom Co or is a builder or a contractor. There is no question of any Dalit or Adivasi running private educational institutions, five star hotels, corporate houses, Media houses, big NGOs, shares and equaity, Hundi and Hawala trades or export-import house. It is only the big industrial and business houses who bribe the political leaders and bureaucrats for making policies to suit their requirements and some time pressurize enough that honest one can't stand . It is again these people who indulge in power theft and tax evasions. In this background, how far it is relevant for Dalits and Adivasis to support this brand of movement against corruption? It can be argued that corrupt politicians and bureaucrats could be from Dalit/Adivasi category also but it is not so because the plum posts and departments which have scope for corruption , are not given to them. In recently constituted Delhi Govt , Dalit ministers were given Social Welfare, Women and Child , SC/ST and Employment while Ministers belonging to the upper castes grabbed the departments like Transport, PWD, Home, Finance, Planning, Power, Education, Revenue, Food and Supply, Environment, Tourism, Administration, Health, Industry etc. More or less, this is the pattern for allocation of departments and posts to the SC/ST bureaucrats' and politicians al over the country. Barring a few exceptions, the role of Dalits and Adivasis in corruption is very limited. At the same time, it is quite likely that when they get a chance to indulge in corruption, they will do so in all probability but because of their lack of decades of experience in this area and their capacity, they will not be able to do some big deals and even when they do so, there will be more hue and cry and in the process they will get caught.

Does this mean that they should not participate in the campaign against corruption? Of course, they should participate because the campaign against corruption is directly related to high prices, development and nationalism, but their own development is possible through other movements like participation in governance and reservation in private sector etc. People who do not have any share in land, business, industry, Media, share market and other financial activities, contracts, coal and mines, etc. cannot become financially strong and join the mainstream and hence least affected from corruption. An anti-corruption movement can hardly play a significant role for their participation in governance and dignity. Most of corruption matters concerning Dalits/Adivasis relate to small matters like issue of ration card, date of birth certificate, caste certificate. Due to the upsurge of the anti-corruption movement across the country, the issues of social justice and participation in governance have become subservient . Because of the rise of the Aam Admi Party, the Lokpal Bill was passed in the Parliament quickly and now so many other related bills are likely to be placed before the next Parliament session in February. The All India Confederation of SC/ST Organizations held a

rally on 16.12.2013 at Jantar Mantar, New Delhi and urged the Parliament to pass bills for reservation in promotions and Reservation Act. It could not happen at that time but was hoped that it would be done in February which now seems quite unlikely because of the stormy anti-corruption movement. At present, neither there is any discussion on the issue of filling up of backlog vacancies nor on the issues of reservation in the private sector, abolition of the contract system for Safai Karamcharis and regularization of the services of contract employees. Atrocities and crimes against Dalits/Adivasis are on the increase but these issues have also taken a back stage. Other issues like reservation in higher judiciary, participation in industries and Media, land to the landless etc. have also been put in the cold storage.

Many people think that corruption affects most the Sc/ST, but it is not so. These sections of the society are affected maximum by the evils of social discrimination and lack of participation in different activities of the society. This movement has also adversely affected the business activities and the business men are making cautious moves. The bureaucrats have also slowed down the process of decision-making for the fear of being implicated in corruption cases. Joseph Stieglitz, renowned economist in the world, also said that the corruption does not necessarily affect the development.This will definitely have an adverse impact on foreign direct investments because the big powers are interested in destabilizing our economy and the process of development. In this current movement against corruption, international organizations like Ford Foundation, Hivos, Panos, Dutch Embassy etc. have funded heavily to weaken the Govt and strengthen the private sector and guard their country interest. This movement is caste biased because in their view, corruption is confined to politicians and government departments where Dalits and Backwards have presence and not in those institutions which are wholly controlled by the upper castes.

Publisher, Printer and Editor - Dr. UDIT RAJ (FORMERLY KNOWN AS RAM RAJ), on behalf of Justice Publications, T-22, Atul Grove Road, Connaught Place, New Delhi-110001, Tel: 23354841-42, Telefax:23354843, Printed at Sanjay Printing Works, WZ-4A, Basai Road, New Delhi.
Website : www.uditraj.com E-mail: dr.uditraj@gmail.com Computer typesetting by N. K. Karn